REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 11 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2022

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतो का अध्ययन

राजकुमार हरिजन[1] , डॉ. गायत्री मिश्रा[2]
[1]शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह (स्वशासी) महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
[2]प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह (स्वशासी) महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश –

भारत में राज्य का कर्तव्य सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करना है। इसी उद्दे"य से संविधान में दिये गये नीति निर्दे"ाक सिद्धांतों में कुछ आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यों को निहित किया गया है, जिन्हें लागू करना राज्य का कर्तव्य है। जैसा कि इस अध्याय के शीर्षक से स्पष्ट है ये सिद्धांत राज्य का मार्गद"ान करने वाले सिद्धांत हैं, लेकिन इन्हें निर्दे"ा मात्र कहना गलत होगा क्योंकि यह संविधान का आदे"ा है कि शासन व्यवस्था चलाने में ये सिद्धांत संविधान की प्रस्तावना में घोषित 'लोक कल्याणकारी राज्य' एवं 'समाजवादी राज्य' के सिद्धांतों के ही विस्तृत रूप हैं। राज्य के नीति निर्दे"ाक सिद्धांतों का वर्णन संविधान के भाग 4 के अनुच्छेद 36 से 51 तक में किया गया है। निर्दे"ाक सिद्धांतों की विचारधारा को आयर लैण्ड के 1937 के संविधान से ग्रहण किया गया है। डॉ. अम्डेकर ने इन तत्वों को संविधान की आर्द"ा वि"ोषता कहा था। ग्रेनिवाल ऑस्टिन ने इन सिद्धांतों को सामाजिक क्रांति के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक बताया है। जवाहर लाल नेहरू ने इन सिद्धांतों के संदर्भ में कहा था कि ये कुछ नि"चत उद्दे"यों का प्राप्त में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का कहना था कि राज्य नीति के निर्दे"ाक सिद्धांतों का उद्दे"य जनता के कल्याण को प्रोत्साहित करने वाली सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है। संविधान में कुछ मूलभूत सिद्धांतो का उल्लेख किया गया है और आ"ाा व्यक्त की गई है कि सरकार अपनी नीतियों का निर्माण करते समय यथासंभव इन सिद्धांतों का पालन करेगी। संविधान के अनुच्छेद 36 और 37 में नीति निर्दे"ाक सिद्धांतो के स्वरूप और प्रकृति की व्याख्या की गई है। इसमें कहा गया है कि इस भाग में दिये गए प्रावधान किसी न्यायलय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होंगे तब भी इनमें दिए हुए सिद्धांत दे"ा के शासन में मूलभूत और विधि बनाने में उन सिद्धांतों का प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य होगा।

मुख्य शब्द – संविधान, नीति निर्दे"ाक सिद्धांत, सरकार एवं राज्य का कर्तव्य ।

प्रस्तावना –

संविधान के भाग 4 में 'राज्य के नीति–निदेशक सिद्धान्त' शीर्षक के अधीन राज्य के कुछ उत्तरदायित्वों का वर्णन मिलता है, जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा नैतिक विकास के लिए आवश्यक है। संविधान निर्माताओं ने इन सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए यह आशा की थी कि केन्द्र और राज्य सरकारें अपनी नीतियों का निर्माण करते समय इन सिद्धान्तों का आदर करेंगी और यथासंभव इन सिद्धान्तों के अनुसार ही अपनी नीतियों का निर्माण करेंगी। संक्षेप में, राज्य के नीति–निदेशक सिद्धान्त समाज के सर्वांगीण विकास के लिए कुछ आदर्शों का निर्धारण करते हैं। यद्यपि इन सिद्धान्तों के पीछ कोई न्यायिक बाध्यता नहीं है, फिर भी देश की

मौलिक विधि होने के कारण राज्य के लिए इन सिद्धान्तों का यथासंभव पालन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

भारतीय संविधान के भाग 4 में समाविष्ट राज्य के नीति–निदेशकों की व्याख्या अनुच्छेद 36 से 51 के मध्य की गयी है। नीति–निदेशक सिद्धान्त संविधान बनाने वालों द्वारा प्रस्तुत एक सामाजिक चार्टर है, जिसका पालन करना राज्यों का कर्त्तव्य है। ये एक समतावादी और लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना के आधार हैं। नीति–निदेशक सिद्धान्तों का वर्गीकरण सामान्य रूप से इस प्रकार किया जा सकता है– अनुच्छेद 36 राज्य की परिभाषा करता है कि इस भाग में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, ''राज्य'' का वही अर्थ होगा, जो इस संविधान के भाग 3 में है। अर्थात् इस भाग में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो 'राज्य' के अन्तर्गत भारत की सरकार और संसद तथा राज्यों में से प्रत्येक राज्य की सरकार और विधान मण्डल तथा भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकारी हैं।

भाग 4 का अनुच्छेद 37 घोषणा करता है कि इस भाग में अन्तर्विष्ट उपबंध किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नही होंगे, फिर भी इनमें अधिकथित तत्व देश के शासन के मूलभूत तत्व या मूलाधार हैं और विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्त्तव्य होगा। अतः यह स्पष्ट है कि ये सांविधानिक निदेश कोरे नैतिक उपदेश नहीं हैं, बल्कि निश्चयात्मक समादेश हैं तथा संविधान के मानव अधिकारों सम्बन्धी उपबन्धों के अभिन्न अंग माने जाते हैं। किन्तु इस अनुच्छेद की प्रकृति के कारण निदेशक तत्वों से ऐसे कोई कानून नहीं उपजते, जिनका उल्लंघन होने पर कोई व्यक्ति उसका उपचार करा सके और न ही वे विधायिका को ऐसा करने के लिए बाध्य हो करते हैं। इसके अलावा किसी भी विधि को इन तत्वों से असंगत होने के कारण अधिकारातीत घोषित नहीं किया जा सकता है। अर्थात् न्यायपालिका राज्य को निदेशक सिद्धान्तों के तहत कर्त्तव्य निभाने या इन्हें क्रियान्वित करने को विवश नहीं कर सकती है।

ग्रेनविल आस्टिन ने कहा था कि राज्य के नीति–निदेशक सिद्धान्तों में सामाजिक क्रान्ति की झलक दिखायी पड़ती है। इन सिद्धान्तों का उद्देश्य भारतीय जनता को वास्तविक या सकारात्मक अर्थों में स्वतन्त्र बनाना है। यह कहना गलत न होगा कि संविधान का भाग 4 अर्थात् नीति–निदेशक सिद्धान्त मूल अधिकारा के पूरक हैं। इसमें तथा भाग 3 में सामूहिक रूप से हमारे संविधान का दर्शन निहित है। संविधान का चौथा भाग उन आदर्शों का उल्लेख करता है, जिन्हें राज्य को प्राप्त करना है और उस प्रक्रिया को निर्धारित करना है, जिसके आधार पर उन आदर्शों की प्राप्ति हो सकती ह। संविधान के चौथे भाग की उपेक्षा करने का अर्थ संविधान द्वारा राष्ट्र को दिलाई गयी आशाओं और उन मूल आदर्शों की उपेक्षा करना होगा, जिनके आधार पर भारतीय संविधान का निर्माण किया गया है।

विश्लेषण –

नीति–निदेशक सिद्धान्तों का लक्ष्य उन आदर्शों को प्राप्त करना है, जिनसे एक सच्चे लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना हो और अन्य बातों के साथ–साथ आर्थिक शोषण और भारी असमानताओं तथा अन्यायों के अंत की व्यवस्था हो तथा राज्य पर न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था सुनिश्चित करने का भार डाला जाय।

अतः अनुच्छेद 38, जो निदेशक सिद्धान्तों का मूलमंत्र तथा मर्म कहता है कि ''राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोककल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा। अर्थात् राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनायेगा जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुनिश्चित हो। 44वें संविधान संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा अनुच्छेद 38 में एक नया अनुच्छेद जोड़ा गया। इसमें नया अनुच्छेद खण्ड (2) जोड़कर यह उपबन्धित किया गया कि राज्य विशेष रूप से आय की असमानता को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यक्तियों के बीच, बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए समूहों के बीच प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा। इस नये अनुच्छेद खण्ड (2) द्वारा नये निदेशक सिद्धान्त को जोड़ने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि अनुच्छेद 38 का क्षेत्र अधिक विस्तृत है और इसके अधीन नये अनुच्छेद द्वारा अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है।

नीति–निदेशक सिद्धान्तों में एक ऐसे कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य निहित है जिसमें किसी प्रकार की आर्थिक विषमता और शोषण न हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु इस भाग के अनुच्छेद 39 के अन्तर्गत कुछ ऐसे

सिद्धान्तों का समावेश किया गया है जिनका राज्य अनुसरण करेगा, अर्थात् राज्य अपनी नीतियों का संचालन इस प्रकार करेगा कि सुनिश्चित रूप से –

(क) पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो।

(ख) समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हितों का सर्वोत्तम साधन बन सके। इस खण्ड के अधीन उद्देश्यों की पूति करने के लिए राज्य उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण कर सकता है।

(ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि धन और उत्पादन के साधन का सर्वसाधारण के अहित के लिए केन्द्रण न हो।

(घ) राज्य ऐसी व्यवस्था करेगा जिसमें पुरुषों और स्त्रिया दोनों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन हो।

(ङ) कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकताओं से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो।

(च) बालकों को स्वतन्त्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएँ दी जाएँ और बालकों तथा अल्पवय व्यक्तियों के शोषण से, नैतिक तथा आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाय।

अनुच्छेद 39 में खण्ड (च) 42वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया है। इस संशोधन के उद्देश्य के बारे में कहा गया है कि अनुच्छेद 39 का संशोधन करके इस बात पर बल दिया जा रहा है कि बालकों के विषय में राज्य की एक रचनात्मक भूमिका है। प्रस्तुत संशोधन खण्ड (च) की विषयवस्तु तथा उसमें अन्तर्निहित मूल भावना में कोई परिवर्तन नहीं करता है। संशोधन द्वारा अपेक्षित उद्देश्य को मूल खण्ड (च) के अधीन भी पूरा किया जा सकता था।

अनुच्छेद 39 (क) में समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता का उपबन्ध किया गया है जो राज्य को निर्देशित करता है कि राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार कार्य करे कि समान अवसर के आधार पर सभी को न्याय सुलभ हो और वह विशिष्टतया यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाये उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।

अनुच्छेद 38 और 39 में विधि शास्त्र के 'वितरण न्याय' (Distributive Justice) का सिद्धान्त निहित है हमारा संविधान राज्य को न्याय के तमाम वितरण का निर्देश देता है। विधि बनाने की दृष्टि से 'वितरण न्याय' की धारणा का अर्थ है नागरिकों की आर्थिक विषमता को समाप्त करना है।

लोकतंत्र भारतीय शासन व्यवस्था का आदर्श है जिसमें राज्य के सभी नागरिकों को उनके सर्वांगीण विकास से सम्बन्धित सम्पूर्ण अवसर उपलब्ध होते हैं, वास्तविक लोकतंत्र सत्ता विकेन्द्रीकरण पर आधारित होता है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 40 राज्य को निर्देशित करता है कि वह ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए आवश्यक कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों। अनुच्छेद 40 का उद्देश्य लोकतांत्रिक प्रणाली को ग्राम और नगर स्तर पर प्रारम्भ करना है।

प्रत्येक लोककल्याणकारी राज्य का कर्त्तव्य होता है कि वह अपने नागरिकों के लिए ऐसी परिस्थितियों का सृजन करे जिसमें उनका समुचित विकास सुनिश्चित हो सके। भाग 4 के अनुच्छेद 41 के अन्तर्गत राज्य से अपेक्षा की गयी है कि राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और निःशक्तता तथा अनर्ह अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने का अधिकार प्राप्त कराने के लिए प्रभावी उपबन्ध करेगा।

अनुच्छेद 42 के अन्तर्गत संविधान निर्माताओं ने राज्य को निर्देशित किया है कि राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता का उपबन्ध करेगा। अनुच्छेद 43 राज्य से अपेक्षा करता है कि वह कर्मकारों को काम निर्वाह मजदूरी, शिष्ट जीवन स्तर और उसका सम्पूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएँ तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्रदान कराने का प्रयास करेगा और विशेष रूप से ग्रामों में कुटीर उद्योग को बढ़ाने का प्रयास करेगा।

निदेशक सिद्धान्तों का अनुच्छेद 43 (क) राज्य से यह अपेक्षा करता है कि राज्य किसी उद्योग में लगे

हुए उपक्रमों (undertaking), स्थापनाओं (establishment), अथवा अन्य संगठनों के प्रबन्ध में कर्मकारों का भाग लेना सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त विधान द्वारा या किसी अन्य रीति से कदम उठाएगा। भारतीय संविधान का उद्देश्य लोकतंत्र के उन आदर्शो को प्राप्त करना है जिसमें सभी नगारिकों को समान संरक्षण प्रदान किया जा सके। अनुच्छेद 44 राज्य को निर्देशित करता है कि राज्य भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता बनाने या प्राप्त करने का प्रयास करेगा।

शिक्षा मानवीय विकास की अनिवार्य आवश्यकता होती है जिसके अभाव में मानवीय व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता। इसीलिए भारतीय संविधान निर्माताओं ने राज्य के नागरिकों के शैक्षिक विकास के लिए अनुच्छेद 45 के अन्तर्गत निर्देशित किया था कि –

'राज्य, इस संविधान के प्रारम्भ से 10 वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबन्ध करने का प्रयास करेगा।'

2002 में 86वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 45 के स्थान पर एक नया अनुच्छेद रखा गया। यह अनुच्छेद उपबन्धित करता है कि ''राज्य छः वर्ष की आयु के सभी बालकों के पूर्व–बाल्यकाल की देखरेख और शिक्षा के लिए अवसर प्रदान करने के लिए उपबन्ध करेगा।''

अनुच्छेद 45 में उपर्युक्त संशोधन की आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योंकि नये अनुच्छेद 21(क) द्वारा 6 वर्ष की आयु से 14 वर्ष तक आयु तक के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मूल अधिकार बना दिया गया है। उन्नीकृष्णन बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य के ऐतिहासिक निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि 14 वर्ष तक के सभी बालकों को निःशुल्क शिक्षा देना राज्य का सांविधानिक दायित्व है, क्याकि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन शिक्षा पाने का अधिकार एक मौलिक अधिकार है, किन्तु उच्च शिक्षा पाने के मामले में यह अधिकार राज्य की क्षमता पर निर्भर करेगा। भारतीय संविधान की उद्देशिका में समाज के सभी वर्गों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय का आश्वासन दिया गया है; जिससे व्यक्तियों की परस्पर हितों तथा समूहों के परस्पर हितों के मध्य सामंजस्य स्थापित हो। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 46 राज्य को यह निर्देश देता है कि राज्य जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों, और जनजातियों के शिक्षा और अर्थसम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा।

अनुच्छेद 47 के अन्तर्गत राज्य को यह दायित्व सौंपा गया है कि वह अपने नागरिकों के पोषाहार स्तर (Level of Nurtrition) और जीवन स्तर को ऊँचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्त्तव्यों में मानेगा और राज्य विशिष्टतया, मादक पदार्थों, और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक औषधियों के, औषधीय प्रयोजनों से भिन्न उपयोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा। अनुच्छेद 48 राज्य को निर्देश देता है कि वह कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों पर संगठित करने का प्रयास करेगा और विशिष्टतया गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्लों के परिरक्षण और सुधार के लिए और उनके वध का प्रतिषेध करने के लिए आवश्यक कदम उठायेगा। अनुच्छेद 48 (क) पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा के लिए राज्य को निर्देशित करता है। इसमें कहा गया है कि राज्य पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन्य तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा। अनच्छेद 49 राज्य को निर्देशित करता है कि (संसद द्वारा बनायी गयी विधि द्वारा या उसके अधीन) राष्ट्रीय महत्व वाले घोषित किए गये कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले प्रत्येक संस्मारक या स्थान या वस्तु का यथास्थिति लुंठन (Spoilation), विरूपण (Disfigurement), विनास अपसारण (Removal) व्ययन अथवा नियति से संरक्षण करना राज्य की बाध्यता होगी।

राज्य का कर्त्तव्य है कि वह व्यक्तिगत और सामूहिक स्वतन्त्रता की रक्षा करे तथा शासन व्यवस्था का संचालन इस प्रकार करे जिससे उसका कोई अवयव (organ) निरंकुश न होने पाये, ताकि राज्य के सभी नागरिकों की व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्वतन्त्रता सुनिश्चित की जा सके। भाग 4 का अनुच्छेद 50 राज्य को यह निर्देशित करता है कि राज्य लोकसेवा में न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के लिए कदम उठायेगा।

अनुच्छेद 51 राज्य को निर्देशित करता है कि राज्य अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में –

1. अंतर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की अभिवृद्धि का,
2. राज्यों के बीच न्याय और सम्मानपूर्वक सम्बन्धों को बनाये रखने का,

3. परस्पर व्यवहारों में अंतर्राष्ट्रीय विधि और संधि–बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाने का,
4. अंतर्राष्ट्रीय विवादों का मध्यस्थता द्वारा निपटारे के लिए प्रोत्साहन देने का, प्रयास करेगा।

संक्षेप में, भारतीय संविधान निर्माताओं ने नीति–निदेशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत राज्यों के लिए एक ऐसी कार्यसूची तैयार की थी, जिन्हें भावी राज्यों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थापना के लिए लागू करना था। संविधान में इन्हे इस आशा के साथ स्थान दिया गया था कि जब राज्य इस स्थिति में हो जायेंगे कि इन निदेशक सिद्धान्तों को प्रभावी रूप से लागू कर सकें तो राज्य इन सिद्धान्तों को यथासंभव क्रियान्वित करने का प्रयास करेंगे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के 62 वर्षों में प्रदेश और देश की सामाजिक आर आर्थिक स्थिति में काफी परिवर्तन हुआ है और धीरे–धीरे राज्यों द्वारा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थापना के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं जिसमें भूमि सुधार, पंचवर्षीय योजनाएँ, ग्राम पंचायतों का गठन, कमजोर वर्ग के विकास एवं कल्याण, निःशुल्क विधिक सहायता, सामाजिक सुरक्षा तथा अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है।

निष्कर्ष –

विगत कुछ वर्षों से अपने अनेक निर्णयों द्वारा उच्चतम न्यायालय ने अनेक नीति–निदेशक सिद्धान्तों को मूल अधिकारों का दर्जा दिया है। अर्थात् अब वे न्यायालय द्वारा लागू किये जा सकते हैं। उन्नीकृष्णन बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य के मामले में अनुच्छेद 45 में विहित नीति–निदेशक सिद्धान्त को मौलिक अधिकार का दर्जा दे दिया गया है। इसी प्रकार रनधीर सिंह बनाम भारत संघ के मामले में समान कार्य के लिए समान वेतन, निःशुल्क विधिक सहायता, तथा कर्मकारों को चिकित्सा सुविधा पाने का अधिकार आदि से सम्बन्धित नीति–निदेशक सिद्धान्तों को मूल अधिकारों का दर्जा दिया गया है। अर्थात् वर्तमान समय में कुछ नीति–निदेशक सिद्धान्तों की प्रकृति प्रवर्तनीय बनायी गयी है क्योंकि उन्हें मौलिक अधिकारों का दर्जा दे दिया गया है और राज्य द्वारा भाग 4 में वर्णित निदेशक सिद्धान्तों में निहित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने का यथासंभव प्रयास किया जा रहा है।

संदर्भ –

- 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा 03.01.1977 से अंतः स्थापित
- 43वें संविधान संशोधन द्वारा अंतः स्थापित तथा 03.01.1977 से प्रभावी।
- बक्शी, पी0 एम0 : द कांस्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, यूनीवर्सल लॉ पब्लिशर, दिल्ली, 2002, पृ0 24.
- काश्यप, सुभाष, हमारा संविधान, पूर्वोक्त, पृ0 124.
- कर्नाटक राज्य बनाम रघुनाथ रेड्डी, ए0 आई0 आर0 1978, एस0 सी0, 215.
- मद्रास राज्य बनाम चंपाकम दोराई राजन, 1951 एस0सी0आर0 525.
- हेगडे, के0 एस0, डायरेक्टिव प्रिसिपल ऑफ स्टेट पालिसी, पूर्वोक्त, पृ0 69.
- पाण्डेय, जे0 एन0, भारत का संविधान, पूर्वोक्त, पृ0 368.
- पायली, एम0वी0, भारतीय संविधान एक परिचय, पूर्वोक्त, पृ0 112.
- सातवें संविधान संशोधन अधिनियम 1956 में संसद एवं विधि द्वारा घोषित के स्थान पर अंत स्थापित।
- सेन्ट्रल इन्लैण्ड वाटर ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन बनाम ब्रजनाथ, (1986) एस0 सी0 156.
- उन्नीकृष्णन बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य, ए0आई0आर0, एस0सी0 (1979), 1360.
- जैन, सुभाष चन्द्र, द कांस्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, सेलेक्टेड इशूज, टैक्समन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2000, पृ0 72.
- आस्टिन, ग्रेनविन, पूर्वोक्त, पृ0 54.

राजकुमार हरिजन
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह (स्वशासी) महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. गायत्री मिश्रा
प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह (स्वशासी) महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)